“दुर्गा सप्तशती में प्रयुक्त अलंकार व संकेत विद्या”

माँ दुर्गा देवी (१) की असीम अनुकंपा व अनन्त कृपा के फलस्वरूप “दुर्गा सप्तशती” नाम से प्रसिद्ध प्रकरण में प्रयुक्त अलौकिक अलंकार व संकेत विद्या को मनन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है. इसी भावना से इस लेख का संकलन, जो रूपांतर अधिक और संकलन कम है, भी हुआ है. यह लेख विद्वान मनीषी श्री आई. के. तैमिनि द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक “हिन्दू प्रतीकों का एक परिचय” पर मुख्य रूप से आधारित है, जिसे वर्ष १९८० में “थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, अडयार, चेन्नई-२०” द्वारा प्रकाशित किया गया था. इसके अतिरिक्त गीता-प्रेस से प्रकाशित “कल्याण” पत्रिका के वर्ष १९३४ के मुख्य “शक्ति-अंक” में दिए लेखों से भी उद्दरण दिये गए हैं. विद्वान लेखकों की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि यह लेख लाभ कमाने के लिए नहीं, वरन् महामाई के गुणगान व मित्र-समाज में निःशुल्क वितरण के हेतू संकलित किया गया. मेरा विश्वास है कि इस लेख में उद्दृत अंश जागरूक पाठक के हृदय में महामाई के प्रति और अधिक श्रद्धा व नारी समाज के प्रति और अधिक आदर का संचार करेंगे. अतः इस संकलन को महामाई अपने चरणों में समर्पित स्तुति-पुष्प मान कर स्वीकार करें. यह जगद्माता (२) का गुणगान चित्त-स्वरूपिणि अम्बिका महाकाली आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध सौम्य माता की स्नेह-सिक्त अनुकपां पाने के उद्देश्य से महासरस्वती को समर्पित है. महामाया मेरा यह अनुरोध स्वीकार करें और अपने चरणों में मुझ अज्ञानी को स्थान दें.

महामाया की यह दुर्गा सप्तशती नाम से प्रसिद्ध चरित्र-गाथा, मार्कण्डेय-पुराण के ८१ वें अध्याय के ७०० श्लोंकों का संग्रह है, जिन्हे तीन भागों में और १३ लघु अध्यायों में विभक्त किया गया है. आइये पहले माँ दुर्गा के चरित्र का गुणगान करें, और कथा का आनन्द लें.

कथा की भूमिका

सुरथ नाम के राजा को उसके मन्त्रियों ने षडयन्त्र करके राज्य से निष्कासित कर दिया. उधर समाधि नाम के वैश्य को भी उसकी कृतघ्न पत्नी व बच्चों ने घर से निष्कासित कर दिया.

दोनों बहुत दुःखी थे व इस प्रकार वे मेधा ऋषि के आश्रम में पहुंचे. (गीता में मेधा अर्थात बुद्धि की शरण में जाने का आदेश है. "मनुष्य अपने मन और बुद्धि द्वारा अपना उद्धार करे तथा अपना पतन न करे, क्योंकि मन ही मनुष्य का मित्र भी है और मन ही मनुष्य का शत्रु भी है. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को बुद्धि द्वारा जीत लिया है, उसके लिए मन उसका मित्र होता है, परन्तु जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं होतीं, उसके लिए मन शत्रु के समान आचारण करता है. (गीता ६.०५-०६)") वे दोनों ऋषि से पूछने लगे, कि हे महात्मा, इस जगत् में लोग क्यों मोहग्रस्त हो कर उन्हीं पदार्थों में आसक्त रहते हैं, जो उन्हें दुःख व क्लेश प्रदान करते हैं. ऋषि ने उत्तर दिया, कि यह तो मानव जीवन का एक साधारण परन्तु सार्वभौम दृश्यमान है, जिसमें चकित होने की कोई आवश्यकता नहीं है. भगवान विष्णु की योगनिद्रा (तमोगुण प्रधान शक्ति) देवी माता (३) महामाया भगवती की अलौकिक और दिव्य माया ज्ञानियों के चित्त को भी भ्रमित कर सक्ती है. प्राणियों को यही माया संसार चक्र से बाधं देती है, जिससे विवश हो कर वे आसक्त हो जाते हैं और दुःख झेलते हैं. राजा पूछते हैं, कि हे भगवन् जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं, उनका अविर्भाव कैसे हुआ, तथा उनके चरित्र कौन-कौन से हैं, उनका कैसा प्रभाव, स्वरूप व प्रादुर्भाव है, यह सब कहिऐ.

ऋषि ने उत्तर में संक्षेप में ब्रह्मांड व्यापी दिव्य शक्ति देवी दुर्गा के स्वरूप का वर्णन किया और तब सुरथ और समाधि वैश्य को बताया कि किस प्रकार देवी माता देवताओं की रक्षा के लिऐ बार-बार प्रकट हो कर दैत्यों का विनाश करती हैं. (४)

देवी माता के बारम्बार प्रकट होने का रहस्य हम ११ वें अध्याय की अन्तिम दो पंक्तियों में पा सकते हैं, जिनमें देवी माता ने प्रण किया है कि जब भी देवताओं की शक्ति क्षीण होगी व असुर उन्हें अपनी विनाशकारी शक्तियों से त्रस्त करेंगे, वे उनकी सहायता के लिऐ प्रकट होंगी. (५) सप्तशती में देवी माता द्वारा अपने इसी प्रण के पालन की झांकी है, कि किस प्रकार वे प्रकट हो कर सनातन धर्म की रक्षा करती हैं.

मनुष्य सप्तशती के पाठ द्वारा अपने निजि स्वार्थ, किसी इच्छित पदार्थ की कामना-पूर्ति या सामाजिक हितों की रक्षा हेतू देवी माता की शक्ति का आवाहन् करते हैं. सप्तशती का विधि-विधान पूर्वक पाठ करने से आश्चर्यजनक रूप से, दैवी शक्तियाँ भी प्राप्त होते देखी गई हैं, और असंख्य हिन्दु, आपदाओं, व्याधियों व दरिद्रता आदि भय के निवारण हेतू इसका सहारा लेते हैं. वास्तव में ऐसे कार्यों के लिऐ सप्तशती के पाठ को बढ़ावा ही दिया जाता है. दैवी व पवित्र शक्तियों का इस प्रकार आवाहन् उचित है या नहीं, यह जानना इस लेख का उद्देश्य नहीं है.

ब्रह्म-विद्या के जानकार (थियोसोफिस्ट्स्) यह पहले ही जानते और मानते हैं, कि सम्पूर्ण सप्तशती मनुष्य के विकास क्रम की विभिन्न अवस्थाऐं हैं और दैवी शक्तियों का अवतरण मानव के अन्तःकरण में होने पर मनुष्य अपनी दुर्बलताओं व विषमताओं को लांघ कर अपनी आत्मा के विकास की अगली सीढ़ी चढ़ जाता है. प्रतीकों के सहारे कथा का अन्दरूनी संदेश देना कोई नयी बात नहीं है. अनेक जिज्ञासु पाठकों व साधकों ने सप्तशती के विलक्षण श्लोकों का गहन अध्ययन

करके यह पाया है कि यह गाथा एक कथा मात्र नहीं है, वरन् हृदय के गहन, और गुप्त रहस्यों की ओर संकेत करती है, जो यह सिद्ध करते हैं कि सात्त्विक और तामसिक शक्तियों के बीच अनवरत युद्ध चलता रहता है. यह अविरल संग्राम मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को बाधा पहुंचाता रहता है. कुछ साधकों ने कथा में प्रयुक्त अलंकारों को मानसिक प्रगति के साथ जोड़ने की चेष्टा की है, परन्तु वे सब प्रयत्न उथले हैं, और कथा के सभी अलंकारों व लक्षणों के रहस्यों को पूर्ण तौर पर उजागर नहीं कर पाते. (मेधा ऋषि के राजा और वैश्य के साथ संवाद के शब्द व्याकरण की दृष्टि से, आध्यात्मिक और अनुबन्ध-चतुष्टय द्योतक होने से सरस, सार्थक, सगर्भ और सहेतु है. ब्रह्म-ज्ञान का वर्णन होने से यह संवाद रसयुक्त व सरस, राजा और वैश्य के मोह दूर करने के प्रयोजन से सार्थक, "ज्ञानी जनों को भी मोह होता है", ऐसा कहते हुऐ राजा का विषयों में दोष दिखाते हुए भी अपने को ज्ञानी कहने से सगर्भ, और राजा का ऋषि से ब्रह्मज्ञान देने के आग्रह से सहेतु). मन चाहता है, कि संसार वासना में आबद्ध रहे, किन्तु प्राण चाहते हैं कि भबवत्-चरणों में सर्वस्व अर्पण करके चरितार्थ हों. इसी समय युद्ध का सूत्रपात होता है (यानि देवासुर संग्राम का सूत्रपात होता है). यह संग्राम देवी ही करती हैं.

प्रथम-कथा

प्रलय के बाद महाविष्णु एकार्णव में योगनिद्रा में लीन थे और उनकी चेतनाशक्ति अन्तर्मुखी थी. सृष्टि की रचना नहीं हुई थी. तभी दो दैत्य, मधु (६) और कैटभ (७), विष्णु के कानों के मैल से उत्पन्न हुए. तुरन्त ही वे ब्रह्मा को लीलने दौड़े. ब्रह्मा ने भयभीत हो कर योगमाया का स्तवन आरम्भ किया, कि वे महाविष्णु को योगनिद्रा से उठा कर उन असुरों का विनाश करवाऐं. (८-यह मधुर स्तवन अन्त में देखें) महाविष्णु जागकर उन असुरों से बाहुयुद्ध करने लगे. ५००० वर्ष तक युद्ध करने पर भी दैत्य नहीं परास्त हुऐ, और विष्णु नें मायाशक्ति का सहारा लिया. दोनों उत्पाती महाअसुर तब माया के वश हुऐ, विष्णु से कहने लगे, कि हम तुम्हारे शौर्य से बहुत प्रसन्न हैं, तुम वर मांगो. विष्णु ने कहा - यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होइये. विष्णु के जाल में फंसे दोनो दैत्यों ने कहा कि आप हमें सूखी पृथ्वी पर मारिये. तब विष्णु ने उन्हें अपनी जंघा पर रख कर चक्र से उनका वध कर दिया.

इस कथा से तीन निष्कर्ष निकलते हैं - ब्रह्मा को त्रिगुणातीत परमात्मा शक्ति का ज्ञान, प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य का ज्ञान, और मधु-कैटभ अर्थात सुकृत-दुष्कृत में निर्ममत्व तथा उसके निर्मूलन का प्रयत्न. गीता में भी श्री भगवान् ने ऐसा ही कहा है -

> जब विवेकी मनुष्य तीनों गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य को कर्ता नहीं समझता है तथा गुणों से परे मुझ परमात्मा को तत्त्व से जान लेता है, उस समय वह मेरे स्वरूप अर्थात् सारूप्य मुक्ति को प्राप्त करता है. (गीता १४.१९ : ३.२७, ५.०९, १३.२९ भी देखें)

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको ही कर्ता समझ लेता है (तथा कर्मफल की आसक्तिरूपी बन्धनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है). (गीता ३.२७ : ५.०९, १३.२९, १४.१९ भी देखें)

कर्मफल की आसक्ति त्यागकर कर्म करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तुम निष्काम कर्मयोगी बनो. (फल की आसक्ति से असफलता का भय होता है, जिसके कारण कर्म अच्छी तरह नहीं हो पाता है.) निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (गीता २.५०) (अर्थात बुद्धिमान मनुष्य सुकृत-दुष्कृतको छोड़ता है) दुर्गा-सप्तशती में भी मधु-कैटभ के नाश का महात्मय सुनने का प्रथमफल दुष्कृत का नाश ही कहा गया है. वास्तव में सुकृत-दुष्कृत दोनों ही शान्ति-मार्ग में दुष्कृत रूप हैं दुर्गा-सप्तशती १२.२-५)

द्वितीय कथा

एक बार महिषासुर नाम का दैत्य अत्यधिक शक्तिशाली बन बैठा और उसने स्वर्ग से देवताओं को खदेड़ कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया. उस पर देवता एक दल बना कर ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु और शिव से मिले. इस शिकायत पर दोनों देवताओं को महिषासुर पर बहुत क्रोध आया, और उनके तथा अन्य देवताओं के शरीर से एक-एक ज्योति निकली. इन ज्योतियों ने मिल कर देवी का रूप धारण किया. देवी की आभा ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड को आलोकित कर दिया. (९ देवी के इस आश्चर्यजनक रूप का वर्णन अन्त में देखें)

तब सभी देवताओं ने देवी को एक-एक आयुध या अलंकार प्रदान किया. इस प्रकार सुसज्जित हो कर देवी ने घोर नाद शब्द किया, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्मांड गुंजायमान हो उठा.

इस भयंकर नाद को सुनकर महिषासुर अपनी सेना ले कर नाद के स्त्रोत को ढूंढ़ने चल पड़ा. देवी के पास पहुंच कर उसने देखा कि देवी असंख्य आयुधों से सुसज्जित हो कर चारों ओर अपनी भुजाऐं फैलाए खड़ी हैं. ("हे महात्मन्, स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का यह सम्पूर्ण आकाश तथा समस्त दिशाएं केवल आपसे ही व्याप्त हैं. आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक भयभीत हो रहे हैं" (गीता ११.२०) "तथा मैं आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं. इसलिए हे विराट्रूप, हे सहस्र बाहो, आप अपने चतुर्भुजरूप में प्रकट हों." (गीता ११.४६) दैत्यों ने तुरन्त देवी पर आक्रमण कर दिया और महाभयंकर प्रलयंकारी युद्ध आरम्भ हो गया. कथा में आगे युद्ध का रोचक वर्णन है और हमें विदित होता है, कि किस प्रकार देवी के प्रत्येक श्वास से भली-भांति सुसज्जित लड़ाकू पैदा हो कर दैत्य सेना का विनाश करने लगे. जब महिषासुर ने अपनी सेना का इस प्रकार विनाश होते देखा तो क्रोधित हो कर भैंसे का उग्र रूप धारण किया (इस रुप के कारण ही उसका नाम महिषासुर पडा) और देवी की ओर भयंकर तेजी से दौड़ा. देवी ने जैसे ही उसे अपनी ओर

आते देखा, उन्होंने अपना पाश उसके गले में फैंक कर उसे बाँध दिया. तब महिषासुर ने एक के बाद एक कई रूप धारण किये. अन्त में जैसे ही वह फिर से भैंसे का रूप धारण कर रहा था, देवी ने अपने पाश से जकड़ कर उसका वध कर दिया. बचे-खुचे दैत्य पाताल आदि निचले लोकों में भाग गये. देवतागण बहुत हर्षित हुऐ और देवी की स्तुति की (१० स्तुति अन्त में देखें). देवी ने संतुष्ट हो कर देवताओं से वर मांगने को कहा. देवतागण बोले, हे देवि, आपने महिषासुर को मार कर हम पर बहुत उपकार किया है. फिर भी यदि आप प्रसन्न हैं तो आप यह वर दें कि हर विपत्ति के समय आप हमें अभय प्रदान करेंगी. देवी ऐसा ही वरदान दे कर अर्न्तध्यान हो गईं. उस प्रकार दूसरे भाग की कथा यहाँ समाप्त होती है.

इस कथा में पाँच बाते हैं - १ देवासुर संग्राम (प्रकृतिज गुणत्रय का प्रभाव - देखिए गीता १८.४० पृथ्वी पर अथवा स्वर्ग के देवताओं में कोई भी प्राणी प्रकृति के इन तीन गुणों से मुक्त होकर नहीं रह सकता है., २ देवताओं की पराजय (सत्त्वगुण और रजोगुण को तमोगुण द्वारा दबा लेना, देखिए गीता ७.१३ "प्रकृति के इन तीनों गुणों के कार्यों से यह सारा संसार भ्रमित रहता है, अतः मनुष्य इन गुणों से परे मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है" और १४.१० "हे अर्जुन, कभी रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सतोगुण, कभी सतोगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण तथा कभी सतोगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है."), ३ हरि की शक्ति का आश्रय लेना (देखिए गीता ७.२८ "निष्काम भाव से अच्छे कर्म करने वाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गये हैं, वे राग-द्वेष जनित भ्रम से मुक्त होकर दृढ़निश्चय कर मेरी भक्ति करते हैं." ४ देवताओं के तेज का एकत्त्व और उस एकत्रित तेज से असुरों का पराजित होना. महिष काम या इच्छा को भी कहते हैं. यही इच्छा यदि परमात्मामें लगी रहे तो कल्याणदायिनि होती है और भोगादि में लगी रहे तो विघ्नस्वरूपा है, ५ देवताओं की स्तुति और वर प्राप्ति. देवताओं की स्तुति से यह स्पष्ट है कि देववृन्द दोषवश यानी काम, क्रोध, राग, द्वेषादि के वशीभूत होकर उस आद्य-शक्ति को भूल गए थे. गीता में भी भगवान् कहते हैं - हे अर्जुन, राग और द्वेष से उत्पन्न (सुख-दुःखादि) द्वन्द्व द्वारा भ्रमित सभी प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त होते हैं; परन्तु निष्काम भाव से अच्छे कर्म करने वाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गये हैं, वे राग-द्वेष जनित भ्रम से मुक्त होकर दृढ़निश्चय कर मेरी भक्ति करते हैं. (७.२७-२८)

तृतीय-कथा

इस भाग की कथा सबसे लम्बी और अलंकार तथा लक्षण-विद्या के अनुसार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है. इस भाग में देवी दो दैत्यों, शुम्भ और निशुम्भ के विनाश के लिऐ प्रकट होती हैं. ये दोनों दैत्य अत्यधिक शक्तिशाली व उत्पाती थे. स्वर्ग से देवताओं को भगा कर ये मनमानी करते थे. देवताओं ने देवी के पूर्व वरदान को याद करके देवी का आवाहन् किया. देवी पार्वती के रूप में प्रकट हुईं और अपने आवाहन् का उद्देश्य जान कर दैत्यों पर बहुत क्रोधित हुईं. तुरन्त उनके एक अशं से अम्बिका का प्राकट्य हुआ. खुद देवी ने पूर्णतया काला और वीभत्स, कालिका देवी का रूप धारण किया.

अम्बिका को दो दैत्यों, चण्ड और मुण्ड, ने देखा. वे तुरन्त शुम्भ के पास गऐ और अम्बिका देवी के अद्वितीय रूप का वर्णन किया. इस पर शुम्भ ने सुग्रीव नामक अपने व्यक्तिगत

चाकर से कहा कि वह तुरन्त अम्बिका के पास जा कर युक्तिपूर्वक उसे शुम्भ की रानी बनने को मनाऐ. सुग्रीव को अम्बिका ने कहा - "मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूं कि उसी के साथ विवाह करूँगी जो मुझे युद्ध में हरा दे." शुम्भ यह सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुआ, और उसने धूम्रलोचन को यह आदेश दिया कि वह सेनासहित जा कर अम्बिका को बलपूर्वक हर लाऐ. धूम्रलोचन को देवी ने मात्र एक हुँकार से मार डाला. तदनन्तर एक और बड़ी सेना चण्ड और मुण्ड के आधीन भेजी गई. अम्बिका ने अत्यन्त क्षुब्ध हो कर अपने ललाट से महा विकराल-मुखी काली देवी को प्रकट किया. जिव्हा लपलपाती काली ने क्षण भर में चण्ड और मुण्ड की सेना का विनाश करके, "हं" शब्द का उच्चारण करके चण्ड और मुण्ड को तलवार से मार गिराया. अम्बिका ने इस पर प्रसन्न हो कर काली को "चामुण्डा" नाम से पुकारा.

अब महाशक्तिशाली शुम्भ युद्ध के लिऐ प्रस्तुत हुआ. इस पर भयंकर कोलाहल हुआ और सभी देवताओं की शक्तियाँ मूर्त्त रूप ले कर युद्ध में भाग लेने को आ खड़ी हुईं. ब्रह्मा की ब्रह्माणी शक्ति, महादेव की माहेश्वरी आक्ति, कार्त्तिकेय की शक्तिरूपा जगदम्बिका शक्ति, भगवान् श्री विष्णु की वैष्णवी शक्ति, श्री हरि की वाराही शक्ति, भगवान् नृसिंह की नारसिंही सक्ति, इन्द्र की ऐन्द्री शक्ति, आदि शक्तियाँ युद्ध में भाग लेने आ पहुंची. तब महादेव जी ने देवी चण्डिका से असुरों के विनाश के लिऐ प्रार्थना की. देवी ने दैत्यों को अन्तिम अवसर देने के लिऐ, शिव जी को दैत्यों के पास भेजा (और इस प्रकार शिव को दूत के रूप में भेजने के कारण शिवदूती कहलाईं).

दैत्यों ने आक्रमण कर दिया, और सबसे पहले काली और चण्डिका ने मिल कर रक्तबीज का वध कर दिया. (संग से काम की उत्पत्ति होती है, अतः जब रक्तबीज का रक्त-बिन्दु भूमिपर गिरता था तो अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे. इसका यही आध्यात्मिक रहस्य है. देखिए गीता २.६२ विषयों का चिन्तन करने से विषयों में आसक्ति होती है, आसक्ति से (विषयों के सेवन करने की) इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा (पूरी नहीं होने) से क्रोध होता है.) तत्पश्चात् निशुम्भ मारा गया. चण्डिका ने शुम्भ को भयंकर आघात पहुंचाया. होश में आने पर शुम्भ बोला - "हे दुष्ट दुर्गे, तू बड़ी मानिनि है, परन्तु मुझ अकेले पर तू दूसरी स्त्रियों के साथ मिल कर आघात करती है". तब देवी बोलीं, "मैं तो अकेली ही हूँ, (११ देखें) और देख, ये मेरी सब विभूतियाँ मेरे अन्दर प्रवेश कर रही हैं. मैं अब तुझसे अकेले ही युद्ध करूंगी." देखिए गीता - हे अर्जुन, मेरी दिव्य विभूतियों का तो अन्त ही नहीं है. मैंने तुम्हें अपनी विभूतियों के विस्तार का वर्णन संक्षेप में कहा है. (१०.४०) जो भी विभूतियुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उसे तुम मेरे तेज के एक अंश से ही उत्पन्न हुई समझो. (१०.४१) ऐसा कहते ही सब देवताओं द्वारा भेजी गई शक्तियाँ, जो युद्ध में भाग लेने प्रस्तुत हुई थीं, अदृश्य हो गईं और देवी अकेली रह गईं. फिर देवी और शुम्भ के बीच घमासान युद्ध हुआ जिसमें सभी प्रकार के दिव्य आयुध प्रयुक्त हुऐ. अन्त में आयुध भी छोड़ कर केवल बाहुयुद्ध हुआ. शुम्भ आकाश में उड़ गया परन्तु अन्त में देवी ने उसका वध कर दिया. जब दैत्यों का विनाश हो गया, तब देवताओं ने अत्यन्त मधुर स्तुतियाँ देवी के यश में गाईं. यह स्तुतियाँ दैवी शक्तियों के दार्शनिक व धार्मिक

स्वरूपों को उजागर करती हैं व भक्तों के हृदयों को अतीव आनन्द से सराबोर कर देती हैं. देवतागण भी अपने निजि स्वार्थों से ऊपर उठ कर सर्वांगीण हितों के बारे में सोचते दिखाई देते हैं. देवतागणों के इस प्रकार स्तुति करने के बाद देवी फिर प्रकट होने का आश्वासन दे कर अदृश्य हो जाती हैं.

इस प्रकार मेधा ऋषि द्वारा राजा सुरथ व समाधि वैश्य को सुनाई गई कथा समाप्त होती है. मेधा ऋषि राजा सुरथ व समाधि वैश्य को सम्मति देते हैं कि उन्हें अपने दुःखों के निवारण के लिऐ देवी की शरण में जाना चाहिऐ. दोनों ने निश्चय किया कि देवी की अर्चना-पूजा व तपस्या करनी चाहिऐ ताकि देवी दर्शन पाऐ जा सकें. साधना पूरी होने पर देवी ने उन्हे दर्शन दिऐ. राजा ने अपना खोया राज्य वापिस पाया और समाधि वैश्य ने मोक्ष की कामना की. देवी ने उनकी कामनाऐं पूरी की और अदृश्य हो गईं. देवी ने देवताओं को यह यह वर भी प्रदान किया कि जब-जब संसार में दानवी बाधा उपस्थित होगी तब-तब अवतार ले कर मैं शत्रुओं का संहार करूंगी. (दुर्गा सप्तशती अध्याय ११.५४-५५. और देखिए "हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों का संहार तथा धर्म संस्थापना के लिए मैं, परब्रह्म परमात्मा, हर युग में अवतरित होता हूं. (गीता ४.०७-०८)"

यहाँ पर दुर्गा सप्तशती की गाथा भी समाप्त होती है. इस गाथा को पढ़ कर कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है, कि इसमें जरूर कुछ अलंकार व संकेत विद्यमान हैं, अन्यथा यह एक निराधार व निरर्थक पौराणिक कथा मात्र रह जाऐगी. परन्तु इस कथा के अन्दरूनी अर्थों को समझना आसान नहीं है, और इसकी शिक्षाओं को सत्य से जोड़ना, जोकि इस कथा का मूल उद्देश्य है, तो और भी कठिन है.

कथा का प्रथम भाग निश्चय ही इसी तथ्य व प्रसंग की ओर इशारा करता है. ब्रह्मा, जोकि देवात्मा का प्रतीक हैं और प्रकृति में उच्च मनस् के रूप में हैं, विष्णु की आराधना करते हैं कि वे इन दोनों शत्रुओं, मधु और कैटभ, इन्द्रिय-सुख और सत्ता की कामना, से उनकी रक्षा करें. निश्चय ही विष्णु का नींद से जागना ही, जीवात्मा में विवेक की शक्ति का जागना है. जब बुद्धि और विवेक की चोट मनस् पर पड़ती है, तब ही जीवात्मा गहरे अज्ञान रूपी अन्धेरे से जाग जाता है और जिस अज्ञान, अविवेक और भ्रम में वह पड़ा है, उसे पहचान कर वह, आंशिक रूप से ही, आम इन्सानी जिन्दगी के बन्धनों को काट कर आध्यात्म के क्षेत्र में कदम रखता है. इस प्रकार जीवात्मा के विकास के क्रम का सफर शुरू हो जाता है और वह आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर चल पड़ता है.

मधु-कैटभ की कथा में सबसे मनोरंजक भाग वह है, जब वे दोनों विष्णु से कहते हैं, कि वरदान मांगो, और इस प्रकार अपना क्षय खुद कर बैठते हैं. मनुष्य का निम्न मन खुद ही तो विवेक के द्वारा उच्च स्तर की आध्यात्मिक शक्तियों की चाह में और सूक्ष्मतर मानसिक सुख ढूंढ़ता हुआ अपना गला खुद ही काट देता है. यह आम तौर पर देखा गया है कि आध्यात्म के क्षेत्र में

सीधा प्रवेश नहीं होता. मनुष्य अधिकतर कट्टर धार्मिकतावादी लोगों से घिरे आम लोगों पर अपना प्रभाव जमाने के लिऐ ही, सूक्ष्मतर लोकों की खोज में या रहस्मयी शक्तियों को पाने की चाह में ही इस जगत् में प्रवेश करना चाहते हैं. (मानव-प्रकृति के दो स्तर हैं. नीचे की तह में उसमें उसके स्थूल शरीर की वासनाएँ और विकार रहते है और ऊपरी तह में उसके दिव्य पुण्य-गुण. आसुरी व तामसिक वृत्तियों पर जय प्राप्त करने के उपरान्त सात्विक, बौद्विक अथवा उच्च वृत्तियों से परिचय हो जाता है, और उसकी उदात्त शक्तियों का विकास होने लगता है. तब वह ईश्वर के साथ तादात्मय स्थापित करने योग्य हो जाता है) उच्च लोकों के विषय में और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा, और उस अनुभव से लाभ उठाने की कामना ही वृत्तियों पर नियन्त्रण करने और विवेकशील तथा पवित्र भाव धारण करने को प्रेरित करती है. जब सही मायने में विवेक जाग्रत हो जाता है, तब वह इन्द्रिय-सुख पाने की कामना को और ना केवल निचले लोकों में, बल्कि उच्च लोकों में भी प्रभुत्व पाने की लालसा को भी दूर कर देता है. सत्य जानने की इच्छा और सब इच्छाओं को दबा देती है. हम पाते हैं कि वासना और कामना-पूर्ति स्वयं अपने आप को खत्म कर के मधु-कैटभ की कथा को चरितार्थ करती है.

विवेक के जाग्रत होने व इसका कुछ विकास होने के बाद जीवात्मा के विकास में पहली रूकावटों के रूप में मन की पाशविक प्रवृत्तियाँ और निम्न मन की अप्रिय कामनाएँ सामने आती हैं. ऐसा इसलिऐ होता है, कि विवेक अच्छे-बुरे की पहचान तो करा सकता है, परन्तु नियन्त्रण नहीं कर सकता. अतः जब जिज्ञासु जीवात्मा यह महसूस करने लगती है, कि अब उसे अपना विकास करना है, तब सुषुप्त अधूरी कामनाएँ भी जाग उठती हैं और निम्न और उच्च प्रवृत्तियों के बीच युद्ध छिड़ जाता है. अनेक पात्रों व व्यक्तित्वों के बीच का युद्ध है यह और जीवात्मा को विभिन्न स्तरों पर यह युद्ध लड़ना पड़ता है. अनेक मोर्चों पर चल रहा यह युद्ध शुरू में तो साधारण मानसिक बल पर लड़ा जा सकता है, और मनस् की दबी हुई सात्विक शक्तियों के आवाहन् की आवश्यकता नहीं होती. अन्त में दबी हुई शक्तियों के बल पर ही यह युद्ध जीता जाता है. सच्ची आत्मनिर्भरता निम्न स्तर की शक्तियों पर निर्भरता नहीं होती, परन्तु दैवी शक्तियों व अन्तरात्मा में बसी देवात्मा का सच्चा और कभी ना समाप्त होने वाला स्त्रोत है. अधम और उच्च, निर्मल वृत्तियों का यह युद्ध कभी कभी लम्बा चलता है, परन्तु धीरता से और दैवी शक्तियों पर पूर्ण श्रद्धा से अन्ततः जीवात्मा विजयी होता है. निम्न वृत्तियों का निरोध होता है और वह फिर जीवात्मा पर हावी नहीं हो पातीं. धीमे-धीमे और भी तामसिक प्रवृत्तियों का हनन होता जाता है, और जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर, मनोमय-कोष, सूक्ष्म-बुद्धि, ज्ञान आदि का यथोचित उत्कर्ष होता जाता है. सांसारिक सुखों की चिन्ता, विषय-वासनाओं की पूर्ति आदि में संलग्न मनुष्य की कुण्डलिनि शक्ति, जोकि मनुष्य के भीतर रहने वाले जीवात्मा का नारी रूप है, अनेक जन्मों तक सोई रहती है. इस प्रकार अनेकानेक जन्मों तक सुख व दुःख का अनुभव करते करते मनुष्य को आखिरकार इनकी निरर्थकता महसूस होती है, और यह ज्ञान होता है कि इस शरीर के पार भी कोई महती वस्तु-पदार्थ है, जो पाने के योग्य है, और जो हमारा अन्तिम ध्येय है. उसे महसूस होता है कि शाश्वत शक्ति तो उसके स्वयं

के भीतर है, जिसे वह जब चाहे प्राप्त कर सकता है. (शास्त्रों में पाँच कोषों का उल्लेख है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्द मय कोष. व्यष्टिरूप में जीव इन कोषों में क्रमशः पहुँचता है. उसका स्थूल-देह अन्नमयकोष है, आत्मा का अन्नमय कोष है यह विराट् ब्रह्मांड. उसका प्राणमय कोष है सृष्टि-स्थिति-क्रिया शक्ति. उसका मनोमय कोष है नाना भाव में व्यक्त होने का संकल्प. विज्ञानमय कोष है वह ज्ञान जो बुत्व के संकल्प को धारण कर रहा है. उसका आनन्द मय कोष निरा आानन्द मय है. यही जगत् का बीज अव्यक्तरूप में रहता है. विराट् विज्ञानमयकोष ही स्वर्गलोक है. यदि जीव व्यष्टि-विज्ञानमय कोष में अवस्थान कर सके तो वह अनायास ही स्वर्गलोक को प्राप्त कर सकता है. गीता के अध्याय १४ और अन्त में दिए देवी सूक्त ७ को भी देखें)

कुण्डलिनि शक्ति के जाग्रत होने पर वह भीतर की दिव्य चेतना को निम्न श्रेणी से ऊपर की ओर ले जाती है, और मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों से निकाल कर, ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र, इन तीन ग्रन्थियों को छिन्न-भिन्न करके सहस्त्रार चक्र पर पहुँचा देती है. जीवात्मा इस स्थिति को पहुँच कर परम् शाश्वत शान्ति, दिव्य-ज्ञान, सत्-चित्त-आनन्द को प्राप्त कर लेता है. असुरों पर देवताओं की विजय हो जाती है.

कथा के दूसरे भाग में महिषासुर की कहानी हमारी आध्यत्मिक प्रगति के स्वरूप को प्रतीक के रूप में दर्शाते हैं. आइए देखें -

पहले तो देवता, ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु और शिव के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि उन्हे महिषासुर के अत्याचारों से बचाया जाए. इससे यह ज्ञात होता है कि जीवात्मा अभी एक नव-साधक है और ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ ही है, परन्तु उसकी आध्यात्मिक शक्तियाँ अभी जाग्रत नहीं हुई हैं. उसका आध्यात्मिक क्षेत्र से अभी सीधा सम्बन्ध नहीं हुआ है और वह अभी उच्च मन के निर्देशन में अपनी शक्तियों को जाग्रत करने के प्रयत्न में रत है. उच्च मन इस सच्ची पुकार का उत्तर तो अवश्य देता है और आध्यात्मिक चेतना का निश्चित, क्रमबद्ध शनैः शनैः विकास व इस विकास से मिलने वाली शक्तियों का अभ्युदय प्रारम्भ हो जाता है. परमात्मा और योग की महान् शक्ति के यह विभिन्न प्रकार के रूप इस अवस्था में आवश्यक होते हैं ताकि साधक उनका अपनी रक्षार्थ उपयोग कर सके. अभी साधक का इतना विकास नहीं हुआ होता कि वह विशुद्ध शक्ति पुंज को धारण कर सके अतः वह इस विशाल व अतीव वेगवान शक्ति स्त्रोत की विभिन्न धाराओं को ग्रहण करता चलता है. महिषासुर के विरोध में इन्हीं विभिन्न प्रकार की शक्तियों का संग्रह देवता गण करते हैं.

महिषासुर ने भी देवी के हाथों वध से पहले विभिन्न रूप धारण किये. वह भैंसा, सिंह, और हाथी बना. यह मनुष्य की विभिन्न पाशविक प्रवित्तियाँ हैं. पशु के शरीर ने अन्ततः मानवाकृति धारण की, जो यह दर्शाता है कि निम्न मन का विकास प्रारम्भ हो चुका है.

कथा के अन्त में देवी देवताओं को वर देती हैं कि वे जब भी याद करेंगे, वे प्रकट हो जाऐंगी. यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है और इस बात का द्योतक है, कि साधक जीवात्मा के निम्नमन की वृत्तियों (महिषासुर) का दमन हो चुका है और वह इतनी प्रगति कर चुका है, कि वह देवात्मा से

सहायता की सीधी याचना कर सके और शक्ति स्त्रोत से सीधी शक्ति अर्जित कर के धारण कर ले. वह शक्ति धारण करने की योग्यता अर्जित कर चुका है.

पहले कही दोनों अवस्थाऐं जीवात्मा का देवात्मा से सीधा सम्पर्क बनाने के लिऐ तैयार की जा रही भूमिकाऐं मात्र थीं. सो जीवात्मा का असली विकास कथा के तीसरे (शुम्भ-निशुम्भ वध वाले) भाग से आरम्भ होता है.

तीसरे भाग में दैत्यों के वध के लिए देवता देवी से सीधे सहायता की याचना करते हैं. शुम्भ ने देवी से अपनी पत्नी बनने के लिऐ प्रार्थना की. जब एक योगी उच्च अवस्था प्राप्त करता है, तब ऐसी ही अवस्था सामने आती है. उसकी कोई अधूरी, अतृप्त पड़ी इच्छा अब पूरी हो सकती है. (१२ देखें) अपनी अर्जित की गई शक्ति का उपयोग वह चाहे तो अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए कर सकता है, या फिर यश की प्राप्ति के लिए. यह बहुत सूक्ष्म प्रकार का अहं है, जिसे कथा में शुम्भ के रूप में दिखाया गया है. देवी की घोषणा है कि वही मुझे प्राप्त कर सकता है जो इस प्रबल आकर्षण को जीत ले. या तो योगी का अहम् उसे इस प्रबल आकर्षण में बाधँ देता है, या विवेक द्वारा वह इस आकर्षण को जीत कर देवी को प्राप्त होता है. परन्तु इसमें देवी भी उसकी सहायता करती हैं.

परन्तु शुम्भ (अहंकार) ही योगी का एकमात्र दुश्मन नहीं है. अभी तो इन आकर्षणों की पूरी सेना है. उनमें प्रमुख हैं, धूम्रलोचन, रक्तबीज, और चण्ड-मुण्ड. हमने देखा है कि किस प्रकार देवी ने शुम्भ(अहंकार) निशुम्भ(ममत्व), रक्तबीज (काम), धूम्रलोचन (क्रोध), चण्ड (बल), मुण्ड (दर्प) और सुग्रीव (परिग्रह) को पराजित किया. शुग्रीव को दैत्यों ने देवी को बल-दर्प पूर्वक पकड़ लाने को भेजा था. एहं और मम दोनों एक ही 'अस्मत्' शब्द से उत्पन्न हैं और शुम्भ-निशुम्भ की तरह भाई-भाई है. दुर्गा सप्तशती में अध्याय ५ में श्लोक १०८ से ११४ तक शुम्भ के लिए मम और अहं शब्दों का अनेक बार प्रयोग हुआ है.

इस भाग में और भी रोचक तथ्य हैं. देवी ने दो ध्वनियों, "हुँ" और "हं" द्वारा दैत्यों का वध किया. एाध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के लिए मंत्रों का उपयोग सर्वविदित है. यह बीज मंत्र एक सीमा तक उन्नति कर चुके साधकों द्वारा ही उपयोग में लिए जा सकते हैं. इन मंत्रों का उपयोग तभी अन्तिम भाग में किया गया है.

और देखें. रक्तबीज के वध तक सभी दैवी शक्तियाँ अलग-अलग दृष्टि-गोचर हो रही हैं, और साधक योगी इतना सक्षम हो चुका है कि इन शक्तियों का अलग-अलग या एक साथ उपयोग कर सके. योगी के इतनी उन्नति कर लेने के बाद ही उसे साधना-चतुष्टय का अभ्यास कराया जाता है.

देवी शुम्भ को वापिस लौटने का अवसर भी देती हैं. इसका यह आशय है कि इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद साधक योगी को जीवन-मुक्त होने का अन्तिम अवसर दिया जाता है. या तो वह पुर्नजन्म आदि के फेर में वापिस चला जाए या फिर देवात्मा में मिल कर

सम्पूर्ण का अंग बन जाए. वह अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है और सिद्धियों को भोग सकता है. परन्तु यदि उसे निर्वाण प्राप्त करना है तो उसे अपना अस्तित्व मिटा देना होगा. खोई बीच का मार्ग नहीं है.

आप जान चुके हैं कि शुम्भ से निर्णायक युद्ध के पहले देवी ने अपनी समस्त विभूतियों व शक्तियों को एकत्र कर लिया. थाह जान लें कि यही निर्णायक क्षण है. आध्यात्मिक क्षेत्र का सर्वोच्च शिखर साधक ने छू लिया है. आकाशगामी शुम्भ आकाश में उड़ चुका है और उसका देवी से युद्ध आरम्भ हो चुका है. आकाश पाँचों तत्त्वों में सबसे सूक्ष्म है. इसी में विश्व का प्रार्दुभाव होता है. योगी साधक का अहं छिन्न भिन्न करके नष्ट खरना है, जिसके लिए आकाश से बेहतर और कोई स्थान नहीं है.

हम यह भी देखें कि राजा और वैश्य को दिए गऐ वरदानों में बहुत अन्तर था. यह वास्तव में ज्ञान या ध्येय को पाने के दो रास्ते हैं. ज्ञान पाने के बाद राजा जगत् में वापिस लौट कर अपनी प्रजा व अज्ञानी साधारण जनता को ज्ञान देता है. दूसरा रास्ता मनुष्य को स्वयं का ध्येय दिलवा देता है.

हम जानते हैं कि वेदों, उपनिषदों व पुराणादि में विश्व में प्राप्य उच्चतम कोटि के आध्यात्मिक तथ्यों का खजाना है. उच्चतम रहस्यों को कहानी आदि में गूँथने से ही यह सर्व ग्राह्य हो सके हैं और इनकी रक्षा भी सम्भव हो सकी है. कोई एक ही इन कथाओं में निहित अलंकारों व संकेतों को समझने का प्रयत्न करता है, अधिकतर जनमानस तो इन कथाओं के सौन्दर्य में अभिभूत हो कर इन्हें युगों तक संजो कर रखता है.

दुर्गा सप्तशती में साधक के लिए ही नहीं, परन्तु समाज के लिए भी संदेश हैं. देवी के अनेक युद्धों से हम बहुत शिक्षा ले सकते हैं. देवी की असँख्य शक्तियों का पारावार नहीं है. देवी की सेना में असँख्य प्रकार की शक्तियाँ हैं, और वे संसार की प्रत्येक नारी में समान रूप से विद्यमान हैं. हे भारत की नारियों, अपनी सुप्त शक्तियों को जगाइये और इस देश में फैले भ्रष्टाचार, अनाचार व कुविचारों को अपने पाश में जकड़ कर नष्ट खर दीजिए. दुर्गा सप्तशती के अध्याय ११ के श्लोक ६ में कहा गया है "विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगस्तु । त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुति स्तव्यपरा परोक्तिः ॥" अर्थात "देवि सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं. जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं. जगदम्ब एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है. तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परा एवं परा वाणी हो."

यदि हम स्त्रियों का आदर करना सीख लें तो हमारा समाज अत्यन्त समृद्ध हो जाऐगा और हम सुखी हो सकेंगे. दुर्गा ने रक्तबीज का वध बिना एक बूंद गिराए किया था. उससे यह जानना चाहिए कि नारी शक्ति दुश्मन का समूल विनाश करने में सक्षम है और अत्यन्त बलशाली और दिव्य शक्तियों की स्वामिनी है. साथ ही वह दया का सागर भी है, तभी वह पुरूष-प्रधान

समाज में अत्यंत कष्ट शह कर भी पुरूष को प्रत्युत्तर नहीं देतीं. कथा से हमें ज्ञात होता है कि हर नारी अत्यन्त साहसी, विदुषी, और योजनाबद्ध कार्य करने वाली है. देवी उसे ही असुर मानती हैं जो नारी का सम्मान नहीं करते, उसे अशिक्षित रखते हैं, और उनका शोषण करते हैं. हमें प्रत्येक नारी का हर स्थिति में आदर सम्मान करना चाहिए. देवी की भांति वह हमें अपने विशाल रक्षक व पोषण करने वाले दिव्य वक्ष में समाने को हमेशा उत्सुक है, और हमारी भूलों व पापों को क्षमा करने को सदा प्रस्तुत है. वह माँ बनकर हमारा लालन-पालन करती है, पत्नी बन कर हमारे उद्देश्यों की पूर्ती में सहायक होती है, बेटी बनकर हमें सुख पहुँचाती है, और बहन बनकर हमारी ढ़ाल बन जाती है. वह सदा हमारे व हमारे परिवार के सुख की कामना करती है. और हम इतने स्वार्थी हैं कि जो नारी हमारे वंश को आगे चलाने में मुख्य भूमिका निभाती है, और अपना घर-बार त्याग कर आ जाती है, हम उसी की अवहेलना व निरादर करते हैं. महामाया हमारी भूलों को क्षमा करे व हम पर अपनी कृपा बनाए रखें.

राष्ट्रों के लिए महान् भी संदेश है. दोस्तों के लिए फूल जैसे कोमल और दुश्मनों के लिए महाकाल से भी भयंकर. “महाकाली रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न दैत्यों का भक्षण करती हुईं रण में विचरती रहीं” (सप्तशती ८.५५) हर देश को चाहिए कि वह अपने दुश्मनों का इसी प्रकार समूल नाश कर दे. दुष्टों का इसी प्रकार दलन अपेक्षित है.

टिप्पणियाँ

१ दुर्गा - भगवान् शिव की पत्नी पार्वती जी के हजार नामों में से एक नाम दुर्गा है.

२ जगद्माता - ललिता-सहस्त्रनाम-स्तोत्र देखें, सौभाग्य भास्कर भाष्य, श्लोक १७ "पुरूषम् वा स्म्रेद्ध देवि स्त्री रूपम वा विचिन्त्येत, अथवा निष्कलाम् ध्यायेत् सत्त, चित्त, आनन्द लक्ष्णम्" इसका अर्थ है कि देवी का पूजन पुरूष रूप या स्त्री रूप में या केवल सत्त चित्त आनन्द रूप में बी किया जा सकता है. हमें पिता का प्यार पाने के लिए पुरूष रूप और माता का प्यार पाने के लिए स्त्री रूप में ईश्वर की आराधना करनी चाहिए. चिदागगनाचार्य ने कहा है - देवि, आप ना पुरूष है, ना स्त्री और ना क्लीब ही हो. आपके पति भी इन विषेशणों से मुक्त हैं. आपकी कृपा-दृष्टि के बिना ना तो हम आपके विषय में सोच सकते हैं और ना आपका आराधन कर सकते हैं.

३ ब्रह्म-ज्ञानियों के द्वारा सदा ही शक्ति को नारी रूप में चित्रित करने में आपत्ति रही है, क्योंकि वह ईश्वर के पुरूष रूप के प्रति ही आश्वस्त हैं. देवी भागवत पुराण में देवी कहती हैं - वह पुरूष और मैं स्वयं एक ही हैं. हे अजा, सृष्टि की रचना हेतू ही यह भेद उत्पन्न होता है. प्रलय के समय मैं ना तो पुरूष, ना स्त्री और ना क्लीब होती हूँ. (Kalyan Kalptaru, Siva Number, Vol. XXXVI, No. 1, October 1990, p.318, "Two forms of Sakti – Tripura Sundari and Kali)

४ रिक् वेद में भी असुरों के साथ युद्ध का विवरण प्राप्त होता है. देवी के असुरों के साथ युद्ध का विवरण हमें सौर पुराण में भी मिलता है. इस पुराण में शिव ने रक्ताक्ष व धूम्राक्ष का वध किया.

५ "हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों का संहार तथा धर्म संस्थापना के लिए मैं, परब्रह्म परमात्मा, हर युग में अवतरित होता हूं". (गीता ४.०७-०८)"

६-७ वैदिक काल में वर्ष के प्रथम मास को मधु कहा जाता था. एक और मास का नाम माधव भी था. यह दोनों मास वसन्त के थे. मधु-कैटभ की कथा देवी भागवत् में भी मिलती है. देखिए भाग १, अध्याय ६ से ९ तक. मतस्य-पुराण (१७०.२) और कलिका-पुराण (अध्याय ६१) में दो दैत्यों, मधु और कैटभ को रजो व तमो गुण भी कहा गया है. ब्रह्मांड की रचना तभी होती है, जब रजो गुण और तमो गुण सतो गुण पर अपना प्रभाव डालते हैं. रिक् वेद में तथा अन्यत्र मधु को सूर्य और

कैटभ को चन्द्र भी कहा गया है. सृष्टि की रचना के समय सूर्य और चन्द्र की गति और पथ निश्चित करना ही शायद मधु-कैटभ की कहानी का अभिप्राय है.

८ ब्रह्मा जी ने कहा - देवि, तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो. स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं. तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो. नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो. देवि, तुम्हीं संध्या, सावित्रि, तथा परम् जननी हो. देवि तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्मांड को धारण करती हो. तुमसे ही इस जगत् की सृष्टि होती है. तुम्ही से इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्प के अन्त में सबको अपना ग्रास बना लेती हो. जगन्मयी देवि इस जगत् की उत्पत्ति के समुय तुम सृष्टि रूपा हो, पालन-काल में स्थितिरूपा हो और कल्पान्त के समय संहाररूप धारण करनेवाली हो. तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो. तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो. भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और माहेरात्रि भी तुम्हीं हो. तुम्हीं श्री, तुम्हीं ह्रीं और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो. लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, और क्षमा भी तुम्हीं हो. तुम खड्गधारिणि, शूलधारिणि, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करने वाली हो. बाण, भुशुण्डी और परिघ - ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं. तुम सौम्य और सौम्यतर हो - इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो. पर और अपर - सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी तुम्हीं हो. सर्वस्वरूपे देवि, कहीं भी सत्-असत् रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो. ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी जब तुमने निद्रा के आधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है. मुझको, भगवान् शंकर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है, अतः तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें है. देवि तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो. ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोह में डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र ही जगा दो. साथ ही इनके भीतर इन दोनो महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो. (दुर्गा सप्तशती १.७३-८७)

९ चक्रपाणि विष्णु के मुख से एक महान् तेज निकला. इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओं के शरीर से भी बड़ा भारी तेज निकला. वह मिलकर एक हो गया. महान् तेज का वह पुञ्ज जाज्वल्यमान पर्वत सा जान पड़ा. देवताओं ने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो रहीं थी. एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त जान पड़ा. भगवान् शंकर के तेज से उस देवी का मुख

प्रकट हुआ. यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आये. विष्णु के तेज से उसकी भुजाऐं उत्पन्न हुईं. चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यभाग कटिप्रदेश, वरूण के तेज से जंघा और पिंडली, पृध्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनो चरण, सूर्य के तेज से (चरणों की) उंगलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की उंगलियां और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुईं. देवी के दांत प्रजापति के तेज से, तीनों नेत्र अग्नि से, भौहें संध्या से और कान वायु के तेज से प्रकट हुए. (दुर्गा सप्तशती अध्याय २. १०-१८)

१० शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली देवि, हमपर प्रसन्न होओ. सम्पूर्ण जगत् की माता, प्रसन्न होओ. विश्वेश्वरि, विश्व की रक्षा करो. देवि तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो. तुम इस जगत् का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वीरूप में तुम्हारी ही स्थिति है. देवि तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है. तुम्हीं जलरूप में स्थित हो कर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो. तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो. इस विश्व की कारणभूता परा मायाहो. देवि तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है. तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो. देवि, सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं. जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं. जगदम्ब, एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है. तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो. जब तुम सर्वस्वरूपा देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो, तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गई. तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं. बुद्धि रूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणी देवि, तुम्हें नमस्कार है. कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था परिवर्त्तन) की ओर ले जाने वाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणी, तुम्हें नमस्कार है. नारायणी, तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मंगलमयी हो. कल्याणदायिनी शिवा हो. सब पुरूषार्थों को सिद्ध करने वाली शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो. तुम्हें नमस्कार है. तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो. नारायणि, तम्हें नमस्कार है. शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवी, तुम्हें नमस्कार है. नारायणि, तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसो से जुते हुए विमान पर बैठती तथा कुश-मिश्रित जल छिड़कती रहती हो. तुम्हें नमस्कार है. माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करने वाली तथा महान् वृषभ की पीठ पर बैठनेवाली नारायणी देवी, तुम्हें नमस्कार है. मोरों और मुर्गों से घिरी रहने वाली तथा महाशक्ति धारण करने वाली कौमारी रूप धारिणि निष्पापे नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. शंख, चक्र, गदा और शार्गःधनुषरूप उत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्ति रूपा नारायणि, तुम प्रसन्न होओ. तुम्हें नमस्कार है. हाथ में भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ों पर धरती को उठाये वाराही रूप धारिणि कल्याणमयी

नारायणि, तम्हें नमस्कार है. भयंकर नृसिंह रूप से दैत्यों के वध के लिये उद्योग करने वाली तथा त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करनेवाली, सहस्त्र नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखायी देने वाली और वृत्रासुर के प्राणों का अपहरण करने वाली इन्द्र शक्तिरूपा नारायणि देवि, तुम्हें नमस्कार है. शिवदूती रूप से दैत्यों की महती सेना का संहार करने वाली, भयंकर रूप धारण तथा विकट गर्जना करने वली नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. दाढ़ों के कारण विकराल मुखवाली मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डा रूपा नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महाअविद्या रूपा नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्य रूपा), बभ्रवी (भूरे रंग की अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईषा (सबकी अधीश्वरी) रूपिणी नारायणी, तुम्हें नमस्कार है. सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि, सब भयों से हमारी रक्षा करो, तुम्हें नमस्कार है. कात्यायनी, यह तीन लोचनों से विभूषित तुम्हारा सैम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे. तुम्हें नमस्कार है. भद्र काली, ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरों का संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भय से हमें बचाये. तुम्हें नमस्कार है. देवि जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों के तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घण्टा हमलोगों की पापों से उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मों से रक्षा करती है. चण्डिके, तुम्हारे हाथों में सुशोभित खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, हमारा मंगल करे. हम तुम्हे नमस्कार करते हैं. देवि, तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देवी हो, और कुपित होने पर मनोवांछित सभी कामनाओं कानाश कर देती हो. जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उन पर विपत्ति तो आती ही नहीं. तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले हो जाते हैं. देवि अम्बिके, तुमने अपने स्वरूप को अनेक भागों में विभक्त कर के नाना प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार कियाहै, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी. विद्याओं में, ज्ञानको प्रकाशित करने वाले तथा शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है. तथा तुमको छोड़ कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गढ़े में निरन्तर भटका रही हो. जहाँ राक्षस, जहाँ भयंकर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरों की सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में भी रहकर तुम विश्व की रक्षा करती हो. विश्वेश्वरि, तुम विश्व का पालन करती हो. तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीया हो. जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं. देवि, प्रसन्न होओ. जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ. सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो. विश्व की पीड़ा करने वाली देवि, हम

तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हम पर प्रसन्न होओ. त्रिलोकनिवासियों की पूजनीया परमेश्वरि, सब लोगों को वरदान दो.

११ हिन्दू विचार धारा के अनुसार ब्रह्मांड केवल परमात्मा का विस्तार मात्र है. परमात्मा के बाहर कुछ भी होना सम्भव नहीं है. सभी शक्तियाँ उसमे ही निहित हो सकती हैं. देवी और देवतागण भी इसलिए उसी परब्रह्म का अंश हैं. देवी और देवता एक ही शक्ति के धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं. यही शिवा और शिव रूप भी हैं. (पृष्ठ ११-१३, देवी और देवता, हिन्दू प्रतीकों का एक परिचय, अग्रेजी पुस्तक, लेखक आई. के. तैमिनि)

और भी देवी आप ही देवात्मा, परब्रह्म, ईथर, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हो. आपसे परे ब्रह्मांड में कुछ नहीं है. सम्पूर्ण ब्रह्मांड आपकी शक्ति का विस्तार है, और प्रलय के समय आपमें ही समा जाता है (सौन्दर्य लहरी ३५)

१२ "एक योगी की आत्मकथा" द्वारा परमहंस योगानन्द जी - परिच्छेद ३४ "हिमालय में एक राजमहल की सृष्टि" शीर्षक से एक आश्चर्यमयी गाथा - यह अनुभव योगानन्द जी के गुरू श्रीमान् लाहिड़ि महाशय को हुआ. ".. .. मेरे मार्गदर्शक ने मृदुल हँसी हँसते हुए कहा : 'आधी रात का समय है. दूर पर जो प्रकाश दिखायी दे रहा है, वह एक स्वर्ण महल की आभा है. आज रात में अद्वितीय महागुरू बाबाजी ने उस महल की सृष्टि की है. सुदूर अतीत में स्वर्ण-महल के सौन्दर्य का आनन्द लेने की तुमने इच्छा व्यक्त की थी. महागुरू अब तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति कररहे हैं, जिससे तुम्हारा पिछला कर्म-बन्धन टूट जाय. उसने पुनः कहा : इस भव्य महल में ही आज रात को तुम्हें 'क्रियायोग' की दीक्षा मिलेगी. बह देखो. तुम्हारे दीर्घ प्रवास की परिसमप्ति पर आनन्द मनाने के लिए तुम्हारे सभी गुरूभाई तुम्हारे स्वागतार्थ उपस्थित हैं. हमारे सामने रत्नरचित झिलमिलाता एक विशाल स्वर्ण-महल खड़ा था. चारों ओर मनोरम उद्यानों से घिरे उस महल का शीत सरोवर में पड़ रहा प्रतिबिम्ब एक अतुलनीय भव्य दृश्य प्रस्तुत कर रहा था. अत्यन्त कारीगरी के साथ बहुमूदय हीरों, नीलमों और पन्नों आदि रत्नों से जटित ऊंची ऊंची कमानें बनाई जई थीं. मणिकों की छटा से रक्तिम आभा बिखेरते द्वारों पर दिव्य कांति युक्त सधु-सन्त खड़े थे. अपने साथी के पीछे-पीछे मैंने एक प्रशस्त स्वागत कक्ष में प्रवेश किया. सुगन्धित द्रव्यों अवं गुलाब की सुगन्ध हवा में फैल रही थी. क्षीण दीपों से विविध रंगों के प्रकाश निकल रहे थे. भक्तों की छोटी-छोटी मंडलियाँ वहाँ विराजमान थीं. उन भक्तों में कुछ श्यामवर्ण के और कुछ गौरवर्ण के थे. वे या तो धीमे स्वर में मंत्रोच्चारणकर रहे थे या आन्तरिक शांति में ध्यानमग्न हो कर ध्यानमुद्रा में बैठे हुए थे. समस्त वातावरण आनन्दमय हो रहा था.

यह सब देख कर मेरे मुख से कुछ आश्चर्योद्गार फूट पड़े, जिसे सुनकर मेरे पथप्रदर्शक ने सहानुभूतिपूर्ण हँसी हँसते हुए कहा : देख लो, देख लो, खूब अच्छी तरह से देख लो और इस भव्य कलाकृति-युक्त महल का आनन्द लो, क्योंकि केवल तुम्हारे सम्मान के लिए ही इसकी सृष्टि हुई है.

.. .. अनन्त स्वार्थसाधक इच्छाशक्ति के साथ एकाकार हो बाबाजी मूलभूत अणु-परमाणुओं को सुसंयुक्त कर उन्हें किसी भी आकार में प्रकट कर सकते हैं. मुहूर्त-मात्र में निर्मित यह स्वर्ण महल उतना ही वास्तविक है, जितनी यह धरती है. जिस प्रकार ईश्वर की कल्पना द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है, और उसकी इच्छा शक्ति इसे सम्पोषित करती है, उसी प्रकार बाबा जी ने इस सुन्दर महल की सृष्टि अपनी इच्छा द्वारा की है, और इसके अणुओं को वे अपनी इच्छाशक्ति द्वारा संगठित किये हुए हैं. जब इस रचना का उद्येश्य पूर्ण हो जाऐगा, बाबाजी उसको विसर्जित कर देंगे.

प्रस्तुत कर्त्ता - राजीव कुमार भटनागर
(raabh@rediffmail.com)
मूल अंग्रेजी संकलन ९.४.१९९५
का अनुवाद व विस्तार करके
नवरात्रों के शुभ अवसर पर
देवी माता के चरणों में १९.४.२००२ को भेंट किया गया

महामाई की जय हो और उनकी कृपा हम सब पर बनी रहे

देवी-सूक्त

प्राचीन काल में अम्भृण नामक एक ऋषि थे. उनकी वाक् नामक एक विदुषी कन्या थी. उस विदुषी कन्या नें आठ मन्त्रों की रचना की जिन्हें देवी-सूक्त के नाम से जाना जाता है. (यह देवी सप्तशती के सूक्तों से भिन्न हैं) -

अहं रुद्रे भिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरूणोभा बिभर्म्यहमिस्द्राग्नी अहमश्विनोभा।१।

मैं (सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा) रूद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ. मित्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनी कुमारों को मैं ही धारण करती हूँ.

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारभुत प्रषणं भगम् । अहं दधामि द्रविणं हव्ष्मते सप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।२।।

मैं शत्रुहन्ता सोम को, विश्वकर्मा को, सूर्य को और (षडैश्वर्यशाली) देवों को धारण करती हूँ. जो (मनुष्य) देवों के उद्देश्य से प्रचुर हर्वि युक्त सोम याग आादि का अनुष्ठान करते हैं, उन यहामानों का यज्ञफल मैं ही धारण करती हूँ. (मैं जो एकमात्र चैतन्यस्वरूप आात्मा हूँ, समस्त कर्म रूप में, कर्म संस्कार रूप में तथा कर्म फल रूप में विराज रही हूँ, इस मन्त्र का यही अभिप्राय है. "धार्मिक संस्कार मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मंत्र मैं हूं, घी मैं हूं, अग्नि मैं हूं तथा हवन कर्म भी मैं ही हूं. मैं ही इस जगत का पिता, माता, धारण करने वाला और पितामह हूं. मैं ही जानने योग्य वस्तु हूं; पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं. प्राप्त करने योग्य परमधाम, भरण करने वाला, सबका स्वामी, साक्षी, निवासस्थान, शरण लेने योग्य, मित्र, उत्पत्ति, प्रलय, आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूं." (गीता ९.१६-१८)(४.२४, ७.१०, १०.३९ भी देखें).

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञि थानाम् । तां मा देवा व्यदधुः पुरून्ना भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ।३।।

मैं (सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी) जगदीश्वरी हूँ. मैं (गो, हिरण्यादि पार्थिव तथा ज्ञान-विद्यादि अपार्थिव) धन को देने वाली हूँ. मैं उस ज्ञाान को देने वाली हूँ जिससे जीव 'मैं' के स्वरूप की उपलब्धि कर सके - जो ज्ञान सब उपासनाओं का आदि है. इस प्रकार के 'मैं' (आत्मा) का देवतागण भजन करते हैं. मैं बहुभावों मे अवस्थित हूँ (मैं अनन्त भावों में तथा अनन्त जीवों में प्रविष्ट हूँ). देवतागण मेरे बहुभावों की उपासना करते हैं.

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई शृणोस्युकत्तम् । अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदाामि ।४।।

जीव अन्नदि जो कुछ खाता है, जो कुछ देखता है, जिन श्वास-प्रश्वासादि कियाओं के द्वारा जीवित रहता है, और जो कुछ सुनता है, ये कियाऐं मेरे ही द्वारा निष्पन्न होती हैं. मुझे जो नहीं मानते, वे संसार में क्षीणता प्राप्त करते हैं. हे (श्रुत) सौम्य, श्रद्धा से सुनो, जो कुछ तुम्हे मैं कहती हूँ.
(हे अर्जुन, तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तप करते हो, वह सब मुझे ही अर्पण करो. (गीता ९.२७)

अहमेव सह्यमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरूत मानुषेभिः । यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।५।।

मैं स्वयं ही इन तत्त्वों का उपदेश देती हूँ और देवों तथा मनुष्यों के द्वारा ये आदृत होते हैं. मैं जिसे नाहती हूँ उसे उन्नतपद देती हूँ . उसे (आध्यात्म जीवनोपयोगी) सुबुद्धि सम्पन्न करती हूँ, आत्मदर्शी ऋषि बनाती हूँ और जगत् सृष्टि स्थिति प्रलय कार्य के उपयोगी ब्रह्मा का पद देती हूँ.

(रिक् वेद में दिये गये देवी सूक्त में भी देवी कहतीं हैं "मैं जिस जिस पुरूष की रक्षा करना चाहती हूं' , उस उस को सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ. उसी को सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञान सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्ति से युक्त बनाती हूँ.)

(गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं - मुझ में ही चित्त को स्थिर रखने वाले और मेरी शरण में आने वाले भक्तजन आपस में मेरे गुण, प्रभाव आदि का कथन करते हुए निरन्तर संतुष्ट रहकर रमते हैं. (१०.०९) निरन्तर मेरे ध्यान में लगे प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले भक्तों को मैं ब्रह्मज्ञान और विवेक देता हूं, जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं. (१०.१०) उनपर कृपा करके उनके अन्तःकरण में रहने वाला, मैं, उनके अज्ञानजनित अन्धकार को तत्त्वज्ञानरूपी दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूं. (१०.११))

अहं रूद्राय ध्नुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शर वे हन्तवा उ । अहं जनाय सम-दं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।६।।

मैं ब्रह्मज्ञान-विरोधी विनाश योग्य रूद्र को (एकादश इन्द्रियों को) हनन करने लिए (प्रणयरूप) धनु में (आत्मरूप) शर का सन्धान करती हूँ. (इस प्रकार) मैं मनुष्यों के लिए युद्ध करती हूँ और स्वर्ग एवं मर्त्यलोक मे आर्विभूत (प्रविष्ट) होती हूँ.

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्सवन्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वे तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि । ७।।

मैं जगत्-पिता (हिरण्यगर्भ) को प्रसव करती हूँ. इस के ऊपर आनन्दमय कोष मध्यस्थ विज्ञानमय कोष में मेरा कारण शरीर अवस्थित है. मैं समग्र भुवन में अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ. वह सामने स्वर्ग लोक है, उसे भी मैं अपने शरीर के द्वारा स्पर्श कर रही हूँ.

(गीता - "हे अर्जुन, मेरी अध्यक्षता में माया देवी (अपनी प्रकृति के द्वारा) चराचर जगत को उत्पन्न करती है. इस तरह सृष्टि-चक्र चलता रहता है. (९.१०) हे अर्जुन, मेरी महद् ब्रह्मरूप प्रकृति सभी प्राणियों की योनि है, जिसमें मैं चेतनारूप बीज डालकर (जड़ और चेतन के संयोग से) समस्त भूतों की उत्पत्ति करता हूं. (१४.०३) हे कुन्तीपुत्र, सभी योनियों में जितने शरीर पैदा होते हैं, प्रकृति उन सबकी माता है और मैं चेतना देने वाला पिता हूं. (१४.०४)")

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा । परोदिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिमा सम्बभूव ।८।।

जब मैं वायु के सदृश प्रवाहित होती हूँ, तभी इस समग्र भुवन की सृष्टि का आरम्भ होता है. इन स्वर्ग तथा मर्त्यलोक के परे भी मैं विद्यमान हूँ, यही है मेरी महिमा.

तन्त्रोक्त देवीसूक्त
(दुर्गा सप्तशती के ५ वें अध्याय से)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्म ताम् ॥१॥
रौद्रायै नमो नित्याये गौर्यै धत्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥२॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्धयै सिद्धयै कुर्मो नमो नमः । नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥३॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥
या देवी सर्वभूतेष बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥
या देवी सर्वभूतेष निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥९॥
या देवी सर्वभूतेष क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥
या देवी सर्वभूतेष सर्वभूतेषुछायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥
या देवी सर्वभूतेष शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥
या देवी सर्वभूतेष तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥
या देवी सर्वभूतेष क्षन्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥
या देवी सर्वभूतेष जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥
या देवी सर्वभूतेष लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
या देवी सर्वभूतेष शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥
या देवी सर्वभूतेष श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥
या देवी सर्वभूतेष कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
या देवी सर्वभूतेष लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥
या देवी सर्वभूतेष वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥
या देवी सर्वभूतेष स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
या देवी सर्वभूतेष दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥
या देवी सर्वभूतेष तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥
या देवी सर्वभूतेष मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
या देवी सर्वभूतेष भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥२७॥
नितिरूपेण याकृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
स्तुता सुरैःपूर्वमभीष्टसंश्रायात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्ति विनम्र मूर्तिभः ॥३०॥

(इसके बाद 'प्राधानिक' आदि तीनों रहस्यों का पाठ किया जाता है.)

चरकसंहिता में शक्ति का स्वरूप
(चिकित्सा स्थान अध्याय २)

प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही रहता है. सन्तान की जननी स्त्रियाँ ही हैं. धर्म स्त्रियों में रहता है. अतएव वे धर्मपत्नी कहलाती हैं. अर्थ स्त्रियों में रहता है, अतः स्त्रियों में ही लक्ष्मी का वास रहता है. स्त्रियाँ शक्तिस्वरूपा हैं, माता, स्त्री, भगिनि, पुत्री, पुत्रवधू तथा और भी अनेकों अनन्त रूपों को धारण करके स्त्रियाँ संसार का सञ्चालन कर रही हैं. संसार स्त्रियों में ही स्थित है, इसलिए स्त्रियाँ संसार की माता हैं. माया, प्रकृति और शक्ति - तीनों एक होते हुए भी अनेक हैं

ॐ

उमेश्वरे उमामयी, रमेश्वरे रमामयी, गिरीश्वरे प्रमामयी, क्षमामयी क्षमावताम्
सुधाकरे सुधामयी, चराचरै विधामयी, क्रियासु संविधामयी, स्वधामयी स्वधावताम्
जगत्सु चेतनामयी, मनःसु वासनामयी, कवीन्द्र भावनामयी, प्रभामयी प्रभावताम्
धनेषु चंचलामयी, कलावतां कलामयी, शरीरिणा मिलामयी, 'शिलामयी' सदावताम्

जो शक्ति शिव और विष्णु के समीप उमा और रमा के रूप में वही गिरीश्वरे वाक्पति में प्रमामयी यथार्थ ज्ञान रूप से वर्त्तमान है. वाणी में जो प्रमा है वह शक्ति की शक्ति है. सुधाकर में सुधा रूप, स्थावराजंगमात्मक प्रपंच में प्रकारमयी, क्रियाओं में संविधान रूप तथा पितरों में स्वधा रूप से विद्यमान है. प्रकारमयी का तात्पर्य है कि स्थावर जंगमों में वह शक्ति ही तो सर्वत्र व्याप्त है. केवल यह स्थावर है, यह जंगम है, आदि प्रकार मात्र भेदक है. जगत में चेतनारूप, मन में प्राक्कर्म जनित संस्कार (वासना) रूप, कवियों में भावना-शक्तिरूप, प्रभाशालियों में प्रभारूप, मेघों में विद्युद्रूप से, कलाशालियों में कलारूप से, शरीरधारियों में इला पृथिवी रूप से विद्यमान, वह भगवती शिलामयी हमारी सदा रक्षा करें

दिनेस में प्रभामयी, मयंक चांद्रिकामयी, हुतास धीर धामयी प्रकासमान काय है ।
पुरातनी परामयी जगत्परंपरामयी, पुरान ब्रह्म भामयी प्रकाम कामदाय है ।
धरामयी चरामयी आसेपथावरामयी, अनंद कंदरामयी अमंदबुद्धिभाय है ।
विरंचिमें गिरामयी, रमेस में रमामयी, महेस में उमामयी, सिलामयी सहाय है ।।

दो वर्ष की अवस्था वाली कन्या कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छह वर्ष की कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष की कन्या सुभद्रा कही गयी है. ऐसी दस कुमारियों को अन्न, वस्त्र, भूषण, फूल, अनुलेप, नैवेद्य, पाद्य, अर्घ्य, धूप, कुंकुम, चन्दन तथा जल आदि अर्पण करके, बिना-जाति भेद के, पूजन करना चाहिए. ऐसा करने से विजय, मंगल तथा त्रिभुवन की तृप्ति का फल मिलता है. कुमारी पूजन से महान् भय, दुर्भिक्ष आदि उत्पात, दुःस्वप्न, दुर्मृत्यु तथा अन्य भयों का निवारण होता है. पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय, और अत्यन्त उत्कट शत्रुओं को भी नष्ट कर देती हैं. कुमारी साक्षत् योगिनी है. जो कुमारी पूजन करता है, उस पर चराचर प्राणी प्रसन्न होते हैं. (योगिनी तन्त्र, यामल तन्त्र, काली तन्त्र, रूद्रयामल तन्त्र, कुब्जिका तन्त्र आदि सभी में ऐसा ही लिखा है. मन्त्रमहौदधि के अठारवें तरंग में भी ऐसा ही लिखा है)